विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक
महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ
1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010
फोन : 0734-2521499, 0755-2660407
e-mail : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-3
दिल्ली का लौह स्तम्भ है वैदिक भारत का वैभव
डॉ. सी.पी. त्रिवेदी

पृष्ठ क्र. 4-5
सप्तशती में सम्राट विक्रमादित्य
डॉ. राजेश कुमार मीणा

पृष्ठ क्र. 6-7
योग ऋषि भर्तृहरि, वीर विक्रम और राजा भोज की गाथा
डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा

पृष्ठ क्र. 8
पुस्तक चर्चा
वेद और भारत
संजीव शर्मा

दिल्ली का लौह स्तम्भ है वैदिक भारत का वैभव

डॉ. सी.पी. त्रिवेदी

लौह स्तम्भ, जो सदियों से अक्षुण्ण, अटल, अचल भारत की गौरव गाथा का परचम लहरा रहा है। वैदिक प्राचीन भारत का वैभव लौह स्तम्भ, दिल्ली कुतुब मीनार परिसर में स्थित लौहे का आश्चर्यजनक स्तम्भ है, जिस पर आज तक जंग नहीं लगी और न कोई इसे हिला सका। लौह स्तम्भ पर उकेरी इबारत से पता चलता है कि इसका निर्माण चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय हुआ जब भारत उन्नति के शिखर पर था। कहा जाता है कि इसका निर्माण वर्तमान विदिशा जिले के उदयगिरी में हुआ और वहां से दिल्ली लाया गया।

आक्रांताओं ने लौह स्तम्भ को नष्ट करने के असंख्य प्रयास किए और थक-हार कर आसपास के 27 जैन और हिंदू मंदिरों को तोड़ कर मस्जिद का निर्माण कराया। यह कहा जाता है कि कुतुबुद्दीन एबक ने इन पत्थरों से कुतुब मीनार का निर्माण कराया। परिसर में आज भी गणेश और देवताओं की मूर्तियाँ तथा दीवारों पर यंत्र अंकित हैं। लौह स्तम्भ मौर्य कालीन है, जो वैदिक संस्कृति की वाहक थी, स्तम्भ पर अंकित चित्र संस्कृति निर्माण का रहस्य वर्णन करते हैं कि एक मौलिक ऊर्जा का निर्माण हुआ, जो सर्वत्र व्याप्त और सर्वशक्तिमान है, जिसे विश्व में एकेश्वरवाद के रुप में ग्रहण किया गया। इससे कहा जा सकता है कि यह वैदिक परिसर था।

इस वैदिक ज्ञान का स्रोत कोई अलौकिक संदेश नहीं वरन् यथार्थ के वैज्ञानिक धरातल पर इसे विज्ञान की कसौटी पर सिद्ध किया गया, तत्पश्चात यह ज्ञान परम्परा के माध्यम से पल्लवित हुआ, जो आज भी हमारे भारतीय जीवन में रचा-बसा है। परन्तु विडम्बना यह है कि वेद ज्ञान को हमने ऋषियों के ध्यान की उपज और पाश्चात्य संस्कृति की आंधी में वेदों को धर्म ग्रंथ की श्रेणी में रख दिया।

भारत के प्राचीन गौरव को नकारने के लिए लार्ड मॅकाले ने इसे हिन्दू नाम दे दिया और भारत विभाजन के गहन अंधकार से ग्रस्त हो गया। इसे स्वीकार कर हमने विश्व में विज्ञान के स्रोत का स्वयं ही अवमूल्यन कर दिया, जिन्हें सिर्फ विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में ही समझा जा सकता है। इसे किसी धर्म का नाम देना भारतीय संस्कृति का अवमूल्यन है। वेद मानव सभ्यता के प्राचिनतम ग्रंथ है, जो पृथ्वी पर सुसंस्कृत मानव का प्रथम शब्द है, जो पृथ्वी पर मानव मात्र की विरासत है।

भारत का गौरवशाली अतीत भारत का आधार है, सैकड़ों सालों की गुलामी ने इसे नेस्तनाबूत करने के असंख्य प्रयत्न किए, परन्तु यह कालजयी संस्कृति आज भी जीवित है जो कवि इकबाल के शब्दों का जीवंत प्रमाण है-

बाकी मगर है अब तक नामो निशां हमारा,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी

सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमां हमारा।

जिस वेद ज्ञान ने विश्व को आलोकित किया, वही आज अज्ञान के अंधकार से ग्रस्त है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय ही हिलीयोडोरस ग्रीक साम्राज्य से चन्द्रगुप्त के दरबार में राजदूत था उसने बेसनगर विदिशा में हिलीयोडोरस स्तम्भ का निर्माण करवाया 113 बी सी ई जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में हुई उन्नति और ज्ञान का प्रमाण है, जो वह अपने साथ ग्रीक ले गया जिसकी स्वीकृति और पावती के हेतु हिलीयोडोरस स्तम्भ का निर्माण करवाया। जो यह संदेश देता है कि जीवन तीन अविनाशी तत्वों का संगम है।

1. अविनाशी आकाश जिसके एक भाग से मूल भूत कणों का भार प्राप्त हुआ, जो सबके अस्तित्व की पहचान है।

2. अविनाशी अश्विन, डीएनए का न्युक्लियोटाईड जो अविनाशी सूक्ष्म ध्वनि तरंग के साथ सभी जीवों के जीवन का कारण है।

3. प्रकाश संश्लेषण की अविनाशी रासायनिक ऊर्जा, जो सभी जीवों में जीवन का आधार है। इन्हें तीन अमृत त्रिणी अमृत पदानि कहा गया है।

5. अविनाशी आकाशीय भाग से मूलभूत कणों को भार प्राप्त हुआ।

6. अविनाशी अश्विन डीएनए का न्यूक्लियोटाईड जोडा प्यूरीन और पायरीमिडीन क्षार तीन अविनाशी और जीवन की तीन अवस्था के साथ हवा में विभाजित होते हैं, जैसे आईने में छवि इनमें सिर्फ नायट्रोजन का अंतर होता है। सृष्टि निर्माण की खगोलिय घटना के साथ ये सूर्य से क्षरित हुए। इनमें स्वत: सम्प्रेषण और अनुवाद समय के साथ यांत्रिक होता है। जो विचार और क्रिया के रुप में परिलक्षित होता है।

जीवन तीन अविनाशी का संगम है जिसे तीन अक्षर बोलियों के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। अक्षर जो प्रकाश से पहले है। जो इस कोषा में दूध के द्वारा अम्ल उत्पन्न करता है। और शक्तिशाली मौलिक ऊर्जा, अवतरित होती है, जो जीव जगत का आधार है।

हे सरस्वती, तुम्हारा स्वरूप विराट है, जैसे विष्णु, हे सरस्वती, हे सिनीवाली इसे अच्छी संतान दो, जो इसके हित में हो। सरस्वती विचार वाक् को सम्बोधन है, तथा गर्भ में विभाजित होने वाले डीएनए को कहा गया है।

1. May Vishnu form and mold the womb, may Tvashta duly shape the forms. PrajÈpati infuses the stream and data lay the germ for thee.

2. SinÏvali set the germ, set thou the germ SarasvatÏ. May the twain gods bestow the germ. The Ashwins crowned with lotuses.

3. That which Ashvins the Twain rub forth with the attrition stock of gold that germ of thine we invoke that in the tenth month thou may bear.Rig.10-184-1, 2, 3

यह अभिव्यक्त किया गया है कि डीएनए, गर्भ में भ्रूण को आकार प्रदान करता है, और अविनाशी प्रजापति जीवन की धरा प्रदान करता है, जिसे विष्णु भोजन द्वारा गर्भ में पोषित करता है। यह तीन भ्रूण को पैतृक रूप से प्राप्त होते हैं।

तदनुसार सरस्वती-वाक-विचार विभाजित हो रहे डीएनए के मन संकेत को उत्प्रेरित करती है। जो संयुक्त होकर भ्रूण के भाग्य को अंकुरित करते हैं। तद्नुसार अश्विन-डीएनए के न्यूक्लियोटाइड जोड़े, जो एक-दूसरे के पूरक हैं। ये पल्लवित होकर भ्रूण को कमल के समान प्रस्फुटित करते हैं। इसे ही अश्विन स्वर्ण के समान शोधित कर पूर्ण आकार प्रदान करता है। उत्तम संतान के लिए, दस माह में अंकुरित, इस बीज का यहाँ आह्वान किया गया है।

नवीन जीवन का सनातन संदेश : ध्वनि के सात स्वर प्रकाश की सात दृश्य किरणों के समान विपरीत गुणों वाली अनुर्द्धेय तरंगें हैं, जिसका स्पेक्ट्रम प्रकाश के स्पेक्ट्रम के समान ही परन्तु विपरीत गुण वाला है, जो एक-दूसरे के पूरक हैं, यह शब्द, विचार और क्रिया के रुप में विकसित हुए हैं।

सृष्टि का उद्भव और विकास ऊर्जा के उष्मा संबंधी सिद्धांतों के अंतर्गत एक मौलिक ऊर्जा से हुआ। योगिक मुद्रा में पुरुष की आकृति वाली सील पर उत्कीर्ण इबारत जीव-जगत के विकास को दर्शाती है। पुरुष सूक्त ऋग्वेद 10-90 एक मौलिक ऊर्जा से सृष्टि का उद्भव और विकास ऊर्जा के उष्मा संबंधी सिद्धान्तों के अंतर्गत एक मौलिक ऊर्जा से हुआ है, जो आज भी प्रासंगिक है। इसके साथ ही मौलिक ऊर्जा अपने द्विस्वभाव ध्वनि और प्रकाश के माध्यम से कार्यरत है। डीएनए जीव का

यंत्र है, जिसे वाक-ध्वनि क्रिया हेतु प्रेरित करती है, जिसे सरस्वती कहा गया है।

मौलिक ऊर्जा की कल्पना पुरुष रूप में करते हुए, उसके हजारों हाथ, हजारों आँखें, और हजारों पाँव के द्वारा मौलिक ऊर्जा की सर्वत्र उपस्थिति का संकेत दिया गया है। यह कहते हुए कि जो कुछ भी था, और जो कुछ भी है, वह यह मौलिक ऊर्जा ही है, इसके द्वारा मौलिक ऊर्जा के सनातन अक्षय स्वरूप को बताया गया है कि मौलिक ऊर्जा नष्ट नही होती। भोज्य पदार्थों-अन्न के द्वारा इसकी वृद्धि होती है। अर्थात अन्न संकेत है कि ऊर्जा के रूपान्तरण के द्वारा इसकी वृद्धि होती है, यह दृश्य जगत उसका एक चौथाई भाग है। और तीन चौथाई सनातन अमृत का भाग होकर ब्रह्माण्ड में ऊपर है। यह कह कर मौलिक ऊर्जा के अनन्त भण्डार की तरफ संकेत किया गया है।

यह कहते हुए कि उसका एक भाग बार-बार उत्पन्न होता है। वह प्रत्येक दिशा में जीव और अ-जीव के रूप में फैला। यह ऊर्जा के रूपान्तरण की तरफ संकेत है। ऋग्वेद 10-90-1 से 4 इसे ही ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में अभिव्यक्त किया गया है।

मैं उस मौलिक ऊर्जा का आह्वान करता हूं, जो इस सृष्टि यज्ञ का कर्ताधर्ता और रत्नों की खान है। ऋग्वेद 1.1.1

सृष्टि का विकास एक मौलिक ऊर्जा से हुआ है, जो हाथी के समान स्थिर है। मौलिक ऊर्जा अपने द्विस्वभाव प्रकाश फोटॉन और फोनॉन सूक्ष्म ध्वनि के अंतर्गत क्रियाशील है। फोटॉन प्रकाश की सूक्ष्मतम इकाई है और फोनॉन ध्वनि की सूक्ष्मतम इकाई है। फोनॉन सूक्ष्म ध्वनि अविनाशी है जो फोटॉन को क्रिया हेतु प्रेरित करती है और सूक्ष्म प्रकाश फोटॉन का समय के साथ संश्लेषण और विघटन होता है। आईंस्टीन के सूत्र सृष्टि का आधार परमाणु के चार घटक इलेक्ट्रान, प्रोटॉन, न्यूट्रान और ऊर्जा है। तथा जीव-जगत का आधार डीएनए के चार क्षार एडेनीन, ग्वानीन, थायमीन और सायटोसीन है। अनन्त संसार के मध्य में और सृष्टि रूपी गहन समुद्र के पृष्ठ में वह महान् यक्ष के समान खड़ा है, जो कुछ भी इस सृष्टि में है, ये सभी उसके, वृक्ष की शाखाओं के समान है।

इस प्रकार संसार वृक्ष जिसका मूल ब्रह्माण्ड में है और अविनाशी ब्रह्म-सोम अक्ष है, जिसे आधुनिक विज्ञान में गुरुत्वाकर्षण चुम्बकीय आकर्षण कहा गया है और जो स्थिर और सर्वव्याप्त है, यह सृष्टि का आधार है, जो सबका भरण-पोषण करता है। सभी चर-अचर इससे जुड़े हुए हैं।

मौलिक ऊर्जा अपने द्विस्वभाव फोटॉन और फोनॉन के द्वारा क्रियाशील है। वाक् शब्द मन में विचारों का स्फुरण करते है। डीएनए जीव का यंत्र है, जिसे वाक-ध्वनि सरस्वती क्रिया हेतु प्रेरित करती है, और अश्विन, डीएनए के न्यूक्लोटाईड कोडे कमल के फूल के समान जीव को आकार प्रदान करता है। इसे लौह स्तम्भ के शीर्ष पर खिलते हुए कमल के रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

वाक, स्वर ध्वनि को सरस्वती कहा गया है, जो दिमाग में विचारों की प्रेरक है।

मौलिक ऊर्जा अपने द्विस्वभाव फोटॉन और फोनॉन के द्वारा क्रियाशील है।

Both their father are also their son; both the chief are also the meanest (Kani——ha) of them; the one god, who has entered in to the mind, born the first, and he within the womb. (Ath. 10.8.28)

दोनों पिता भी हैं और पुत्र भी हैं। दोनों वरिष्ठ भी हैं और कनिष्ठ भी। एक देव मन में और वही गर्भ में प्रविष्ट हुआ। जिसका अनुसरण विद्युत-इन्द्र करता है। यह सृष्टि का आधार है। जिसे सांकेतिक रूप में स्तन, दूध कहा गया है, जो सृष्टि को दूध की सतत् धरा के समान पोषित करता है। एक देव मन में और वही गर्भ में प्रविष्ट हुआ। मन और गर्भ के द्वारा परमाणु में केन्द्रक, न्यूट्रॉन और प्रोटॉन को बाँधने वाली अदृश्य शक्ति, वाक् शब्द की तरफ ध्यान आकर्षित करती है, जो बिना किसी आधर के सबको एक-दूसरे से अदृश्य रूप से जोड़ती है।

लेखकों से निवेदन

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ का नवीन प्रकल्प '**विक्रम संवाद**' पाक्षिक आलेख सेवा है. विभिन्न प्रकाशन-प्रसारण माध्यमों को नि:शुल्क प्रेषित किया जाता है. इस आलेख सेवा का उद्देश्य प्रमाणिक एवं अज्ञात तथ्यों से पाठकों का परिचय कराना है. आपके पास ऐसी कोई सामग्री हो तो कृपया हमें भेजें.

-संपादक

सप्तशती में सम्राट विक्रमादित्य की गाथा

डॉ. राजेश कुमार मीणा

भारतवर्ष के भी दीर्घकालीन इतिहास में सर्वदा एक ही भाषा के दो रूप प्रचलित रहे हैं। एक साहित्यिक या सुधरा हुआ रूप जो 'संस्कृत' के नाम से अभिहित होता था और दूसरा लोक में प्रचलित तथा बोलियों से संबंधित रूप जिसे 'प्राकृत' (प्राकृतिक) या अपभ्रंश कहा गया है। जैन तथा बौद्ध धर्म, सुधारवादी, धर्म के रूप में उठ खड़े हुए थे। इन्होंने वैदिक यज्ञों एवं संस्कृत भाषा के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया पैदा कर दी थी। जनता तक पहुँचने का प्रयास किया था। इनके उदय के पश्चात् प्राकृत अथवा लोक प्रचलित भाषा ने महत्व प्राप्त किया है, तथा इसका प्रचार लोक साहित्य के माध्यम के रूप में किया गया। अशोक तथा अवान्तर-कालीन मौर्य नरेशों के समय पालि ने जो उस युग की प्राकृत भाषा थी राजाश्रय प्राप्त करके पर्याप्त उन्नति की। तथापि संस्कृत कभी ग्रसित नहीं हुई और न इसका व्यवहार ही बन्द हुआ।

600 ई. पू. से लेकर 200 ई. पू. तक फैले हुए इसी काल में अधिकांश सूत्र साहित्य की रचना हुई। संस्कृत में लिखित कौटिल्य अर्थशास्त्र की भी रचना प्रथम मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के राजाश्रय में हुई थी। उसी काल में रामायण तथा महाभारत के भी कुछ भाग लिखे गये। इस काल के अन्त में पतंजलि ने पणिनि की अष्टध्यायी पर भाष्य लिखा। अत: प्रथम शताब्दी ई. पू. में अत्यधिक प्रचलित भाषा संस्कृत थी। यद्यपि प्राकृत का भी सीमित व्यवहार होता था।

अमर सिंह ने संस्कृत को निम्नलिखित नामों से अभिहित किया है: (1) ब्राह्मी (ब्रह्म अथवा वेद से उद्धुत), (2) भारती (भारत की अत्यधिक संस्कृत जाति भरतों द्वारा प्रयुक्त और पूर्ण की गयी अथवा भारतीय संस्कृति का अत्यधिक परिपूर्ण का माध्यम), (3) भाषा (बोधगम्य अभिव्यक्ति)। उन्होंने प्राकृत को भी दो नामों से पुकारा है: (1) अपभ्रंश (2) अपशब्द। ये दोनों शब्द लोकप्रिय भाषा के व्यतिक्रमिक तथा ढीले स्वभाव का निर्देश करते हैं, जो जीवन के साधरण कार्यों के लिए प्रयुक्त होती थी।

साहित्यिक परम्परा - कुछ चुनी हुई लिखित अनुश्रुतियों को यहाँ रखा जाता है।

(1) गाथा-सप्तशती

विक्रमादित्य के बारे में सबसे प्राचीन लिखित अनुश्रुति प्रतिष्ठान के राजा हाल सातवाहन रचित गाथा-सप्तशती की है, जिसमें श्रृंगार रस के ललित पदों का संग्रह हैं। इसमें एक श्लोक विक्रमादित्य का उल्लेख करता है तथा जिस समय गाथा-सप्तशती की रचना हुई, कवियों में यह परम्परा प्रचलित थी कि विक्रमादित्य नाम का एक राजा था, जो अपने विजयों तथा उदारता के लिए प्रसिद्ध था।

इतिहासकारों ने समान रूप से स्वीकार किया है कि गाथा-सप्तशती का लेखक हाल सातवाहन प्रथम शती के अन्तिम दिनों में राज्य कर रहा था। विक्रमादित्य की प्रसिद्धि तथा नाम के फैलने के लिए डेढ़ सौ वर्ष भी पर्याप्त समझें तो उनकी तिथि बड़ी आसानी से प्रथम शती ई. पू. रखी जा सकती है।

(2) वृहत्कथा

दूसरा प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थ जो विक्रमादित्य के प्रथम शती के पूर्व होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। वह गुणाढ्य द्वारा पैशाची प्राकृत में लिखित वृहत्कथा है। मूल वृहत्कथा अप्राप्य है किन्तु इतना निश्चित है कि इसका संस्कृत में अनुवाद आठवीं ई. से पूर्व हुआ होगा, जिसका विकास दो परम्पराओं में हुआ - 1. कश्मीरी और 2. नेपाली। प्रथम का संस्कृत के दो ग्रन्थों से प्रतिनिधित्व होता है- 1. क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा-मज्जरी तथा 2. सोमदेव का कथासरित्सागर: दूसरी परम्परा को केवल एक, जिसका सम्पादन फ्रांसीसी लोकेट ने किया है। यदि इन ग्रन्थों का उचित परीक्षण तथा तुलनात्मक अध्ययन हो तो मूल वृहत्कथा को पुनर्निर्मित करना सम्भव है तथा यह बड़े विश्वास तथा निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि वृहत्कथा में विक्रमादित्य के जीवन के बारे में बड़े विस्तार के साथ वर्णन है।

परम्परा के अनुसार गुणात्मक हाल सातवाहन के

समकालीन थे तथा उन्होंने उनकी राज-सभा को सुशोभित किया था। गुणाढ्य की तिथि के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं किन्तु हम इसे प्रथम या दूसरी शती के बाद खींच कर नहीं ला सकते है।

इस प्रकार वृहत्कथा के द्वारा विक्रमादित्य के अस्तित्व का प्रथम शती ई. के पूर्व होने का प्रमाण मिलता है।

(3) वृहत्कथा- मञ्जरी

यह ग्रन्थ ग्यारहवीं शती में कश्मीरी पण्डित क्षेमेन्द्र द्वारा लिखा गया था। लेखक स्वीकार करता है कि ग्रन्थ गुणाढ्य कृत प्राचीन ग्रन्थ वृहत्कथा पर आधारित है। हम लोगों ने पहले ही देख लिया है कि गुणाढ्य हाल सातवाहन के समकालीन थे तथा उनकी तिथि प्रथम शती ई. है। वृहत्कथा-मञ्जरी में (10-108-13) विक्रमादित्य की निम्नलिखित कहानियाँ संग्रहीत हैं। जिसमें विक्रमादित्य के पिता से लेकर विक्रमादित्य के जन्म तक की कहानियाँ संग्रहीत हैं।

(4) कथा-सरित्सागर

इस ग्रन्थ की रचना ग्यारहवी शती में सोमदेव नामक एक अन्य कश्मीरी पण्डित द्वारा हुई थी। वृहत्कथा -मञ्जरी में उपलब्ध विक्रमादित्य के जीवन कथा उनके कार्यों के बारे में प्राप्त सामग्री से भी विस्तृत सामग्री इस ग्रन्थ में प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता तथा स्वरूप के संबंध में सोमदेव ग्रन्थ के कथा -पीठ (ग्रन्थ-भूमिका) में कहते हैं यह ग्रन्थ गुणाढय-रचित वृहत्कथा के ही ढांचे है, जहाँ से इसकी सामग्री प्राप्त की गई है। तथा सोमदेव ने विक्रमादित्य के जीवन से संबंधित कथाओं का उल्लेख अपने ग्रन्थ के कई भागों में किया है।

कुछ अन्य साहित्यिक ग्रन्थ

कुछ अन्य ग्रन्थ भी विक्रमादित्य के साहस तथा प्रेम-कथाओं के बारे में विस्तृत रूप से वर्णन करते हैं। सिंहासन द्वात्रिषक, वैतालपच्चीसी, विंशति, शुक-सप्तति आदि बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ हैं, जिनका भिन्न-भिन्न नामों से भारत की लगभग सभी प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद हो गया है।

चूँकि ये ग्रन्थ बहुत ही लोकप्रिय थे और साधारण कोटि के लेखकों द्वारा लिखे गये थे, इनमें बहुत ही परिवर्तन होता गया। अत: इनका ऐतिहासिक मूल्य समाप्त हो गया है। इनमें विक्रमादित्य का वृतान्त काल्पनिक बन जाता है किन्तु वे सभी एक स्वर से उज्जयिनी के विक्रमादित्य का अस्तित्व तथा उनके जीवन के विभिन्न अगों में उनकी महत्व सिद्ध करते हैं। इन ग्रन्थों के विक्रमादित्य अस्पष्ट हो सकते हैं किन्तु अवास्तविक नहीं।

विक्रमादित्य के पुराणों में साक्ष्य पर जैन परम्परा

जैन परम्परा से पता चलता है कि विक्रमादित्य गर्दभिल्ल के वंशज थे और जब पुराणों में गर्दभिल्ल का उल्लेख है, तो स्पष्ट है कि वे विक्रमादित्य के अस्तित्व को भूला नहीं सकते। हम पुराणों में विक्रमादित्य के वंश के संकेत के अतिरिक्त कुछ और स्पष्ट उल्लेख भी पाते हैं। भविष्यपुराण में उनका दो बार उल्लेख है।

एक स्थान पर वे विक्रमादित्य की निम्नलिखित -कथा देते हैं। 'उस समय एक जयन्त नामक ब्राह्मण रहता था। घोर तपस्या से उसे इन्द्र के यहाँ से एक फल प्राप्त हुआ, जिसके खाने से कोई भी अमर हो सकता था। फल को पाकर ब्राह्मण अपने घर चला गया। जयन्त ने उसे भर्तृहरि को बेच दिया, जिसे खाकर भर्तृहरि योगासीन होकर वन में चले गये। तब विक्रमादित्य ने अपने राज्य पर निर्द्धन्द्व शासन किया। तथा दूसरे उल्लेख में जीवन-वृत दिया हुआ है।

इसी के साथ विक्रमादित्य के अन्य उल्लेख स्कन्द-पुराण के कुमारिका-खण्ड में हुआ हैं, जहाँ कहा गया है कि वे कलि प्रारम्भ होने के तीन सहस्त्र वर्षों बाद राज कर रहे थे। भविष्य-पुराण की तिथि में मतभेद है। पार्जिटर के अनुसार दूसरी शती में एक आन्ध्र राजा यज्ञश्री के समय में इसकी रचना हुई थी। इस प्रकार यह विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता के लिए पुख्ता प्रमाण है। इस प्रकार विक्रमादित्य नाम भारतीय इतिहास में ज्ञान तथा साहित्य के आश्रयदान का प्रतीक है। लिखित अथवा मौखिक सभी अनुश्रुतियों में विक्रमादित्य द्वारा साहित्य, विद्वान् एवं कलाकारों को उत्साह तथा सहायता प्रदान करने और समकालीन प्रसिद्ध पण्डितों को सम्मानित किए जाने का प्रचुर वर्णन मिलता है।

विक्रमादित्य के शासनकाल में साहित्यिक और कलात्मक कार्यों का बाहुल्य था। तब कोई आश्चर्य की बात नहीं कि प्रसिद्ध कवि, लेखक, कलाकर, संगीतज्ञ, वैद्य तथा ज्योतिषि उनकी सभा में आश्रय के लिए आते रहे। उसी का एक प्रमाण है कि उनकी राज्य सभा को नवरत्नों से परिपूर्ण किया था।

योग ऋषि भर्तृहरि, वीर विक्रम और राजा भोज की गाथा

डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा

मालवा की यशकीर्ति, मान, महिमा, गौरव गरिमा और सत्ता महत्ता का बखान सर्वत्र किया गया है। मध्य भारत (अब मध्यप्रदेश) यदि भारत का हृदय स्थल है तो मालवा नाभी स्थल है। हृदय की धड़कनें जहाँ जीवित रहने का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं वहीं नाभी पूरी देह का केन्द्र स्थल होकर दिव्यता का बोध करवाती है। योग साधना का केन्द्र भी नाभि स्थल ही माना गया है।

मालवा की योग साधना के दिव्य पुरुष महाराजा फिर राजयोगी भरथरी (भर्तृहरि) का नाम समग्र भारत में अत्यंत सम्मान के साथ जाना जाता है। उन्होंने जहाँ मालवाधिपति के उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए प्रजा वत्सलता की धन्यता स्थापित की वहीं एक सजग पुरुष के रूप में भी वे अपने पश्चात आने वाले राजपुरुषों के लिए प्रेरक सिद्ध हुए।

सिद्ध तो वे योग साधना में भी हुए। जैसे ही उनके हृदय में विरक्ति भाव जागृत हुआ उन्होंने अविलम्ब अपने अनुज विक्रमादित्य का राजतिलक कर दिया। ऐसी भव्य भावना का उदाहरण तो केवल रामायण काल में ही मिलता है। भगवान राम ने पिता के आदेश का पालन करते हुए तत्काल वन गमन स्वीकार कर लिया था। भरथरी (भर्तृहरि) ने तो आजीवन संन्यासी जीवन स्वीकार कर लिया। आज उनका यश अविभाजित भारत की अंतिम अफगानी सीमा तक अत्यंत सम्मान से बखान किया जाता है। उनके चरित्र की गुण-गाथाएँ कही, गायी और सुनी जाती हैं।

इसी परम्परा में हम मालवाधिपति विक्रमादित्य का यशस्वी नाम स्मरण कर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। डॉ. पूरन सहगल द्वारा संकलित-संपादित पंजाबी की लोक गाथा में गाथाकार कहता है-

अन्न-जल दी थोड़ नहीं, भर होंदी बरसात।
मेहनतकश किरसान हिन, करदे श्रम दिन रात।।
ना चोरी ना लुटपटी, ना होंदा कोई कलेष।
विकरम जी दे राज विच, खुद बैठा मंगलेष।।
विकरम सी धरमातमा, करदा दान दिल खोल।
अहंकार करदा नहीं, कहंदा सुथरे बोल।।
वीर बड़ा, दिलगीर बड़ा, सी बहुं बड्डा जंगबाज।
आपणी परजा दे दिल विचां- करदा विकरम राज।।

- संग्रहीत, विक्रम गाथा: पद क्र. 20 से 23

विक्रमादित्य के राज में जल की कमी नहीं थी। वर्षा पर्याप्त होती थी। किसान मेहनतकश थे, दिन रात श्रम करते थे। कहीं भी चोरी, लूट या क्लेश नहीं होता था। विक्रमादित्य के राज में स्वयं मंगलेश (मंगलनाथ) विराजित हैं। वे बहुत धर्मात्मा थे, मुक्त हस्त दान करते थे। उनमें अहंकार बिलकुल भी नहीं था। स्पष्ट वक्ता थे। उनकी वाणी में मधुरता और विनम्रता थी। वे बहुत बड़े वीर थे। रणबाज तो थे ही सबके प्रिय भी था। वह अपनी प्रजा के दिलों पर राज करते थे।

किसी भी राजपुरुष के लिए इससे बड़ी प्रशंसा इतने कम शब्दों में कह देना गाथाकार की अभिव्यक्तिक क्षमता का प्रमाण और चमत्कार तो है ही यह आज के राजपुरुषों के लिए प्रेरक प्रसंग भी है।

इसी लोक गाथा में गाथाकार ने प्रारंभ में उज्जैन का जो गुणगान किया है वह अद्भुत है-

धरती ते हिक सरग सुण्या।
हिक शहर सुण्या उज्जैन सुण्या।।
शिवजी दा तीरथ शहर सुण्या।
शिवांदी रेहंदी मेहर सुण्या।।
जित्थे कल-कल वहंदी हे नदी।
सिपरा केंहदे नाम
सिपरा दे तट ते बण्या, महाकाल दा धाम।।

-यही गाथा: पद क्र. 1 से 3

मैंने धरती पर एक स्वर्ग सुना है, एक शहर सुना है जिसका नाम उज्जैन है। मैंने ऐसा शहर सुना है, जहाँ भगवान शिव का तीर्थधाम है। जहाँ कल-कल एक नदी बहती है जिसका नाम क्षिप्रा है और कहते हैं इसी नदी तट पर महाकाल भगवान का धाम (मंदिर) है।

पूरी गाथा में गाथाकार ने महाराजा विक्रमादित्य के नवरत्नों, उनके यश गुणगान, उनकी दिव्यता और भव्यता का सजीव वर्णन कर मालवा, उज्जैन और महाराजा विक्रमादित्य के

सुराज का जीवंत वर्णन किया है।

महाराजा तथा राजयोगी भरथरी की दोनों गाथाएँ लोक भाषा पंजाबी में लिखी गई हैं जिन्हें बड़े यत्न से डॉ. पूरन सहगल ने संग्रहीत एवं संपादित किया है तथा दोनों गाथाओं का उसी मीटर में हिन्दी रूपांतर भी किया है। ऐसा करके जहाँ डॉ. पूरन सहगल ने अपनी लोकभाषा बल्कि मातृभाषा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दिखाई है वहीं मालवी, हिन्दी के प्रति भी काव्य साधना एवं शोध-साधना के प्रति अपना कर्तव्य निर्वाहित किया है।

तीसरी और ऐसी ही महत्वपूर्ण गाथा मालवी की है। महाराजा भोज के जीवन चरित्र एवं उनकी काव्य साधना के साथ-साथ उनके राज्य के यश का गुणगान करती यह गाथा मालवी लोक माता के चरणों में शतदल सुन्दर एवं सुवासित कमलदल की भाँति डॉ. पूरन सहगल ने अर्पित की है। इस मालवी लोक गाथा का भी इन्होंने उसी मीटर में हिन्दी अनुवाद किया है।

यह गाथा लगभग एक सौ वर्ष पूर्व अरावली की तलहटी में स्थित गाँव पड़दां में निवासरत दौलतगिरि के वारिस एकलिंगगिरि से डॉ. सहगल ने कई दिनों के प्रयास से प्राप्त की थी। जिसे उन्होंने इस संग्रह में संकलित किया है। डॉ. सहगल ने गाथाओं के संग्रह का क्रम भी मालवाधीशों के क्रमानुसार रखा है।

इस गाथा के रचनाकार संस्कृत के परम विद्वान दौलतगिरि ने मालवा का विशेष रूप से उज्जैन का जैसा जीवंत वर्णन किया है वह स्तुत्य तो है ही अनुपम और अपूर्व भी है। गाथाकार ने महाराजा भोज की देहयष्टि और उनकी दिव्य आभा का जैसा वर्णन मालवी में किया है वह दौलतगिरि की विद्वता का सहज प्रमाण ही है।

गाथा कहती है-

भोजदेव एसा फबे, जेसा इन्दर राज।
खांदे तीर कमांठड़ो, खड़ग कटारी साज।।
चाले कांकण सिंघ ज्युँ, चौड़ी छाती ताण।
बाहयाँ घुटना लांबड़ी, खांदा परबत जाण।।
मूंडे भलके हूरजो, आँखा चलके ओज।
दया-धरम अर नीति रो, संगम राजो भोज।।

- संग्रहीत, गाथा: पद क्र. 11 से 13

भोजदेव ऐसे सुशोभित होते थे, जैसे इन्द्र राजा। उनके कंधे पर तीर कमान, हाथ में खड्ग (असि), और कमर में कटारी आदि रहती थी। वे चलते थे तब ऐसा लगता था मानो वनराज चला आ रहा हो। उनकी छाती बहुत चौड़ी थी। वे अजानबाहू थे। उनके स्कंध पर्वत के समान दृढ़ थे। उनके मुख पर सूरज की आभा थी। आँखों में ओज था। वे दया धर्म और नीति का संगम थे।

महाराजा भोज की प्रजा वत्सलता एवं सुशासन का सटीक वर्णन इस गाथा में हम सहज रूप से जान सकते हैं। उनकी विद्वता, उनका सर्वविद्या ज्ञान, उनकी विद्वानों के प्रति सम्मान भावना के अतिरिक्त उनके द्वारा निर्मित कालिका मंदिर, भोजशाला, उज्जैन में महाकाल मंदिर, शिव पंचायतन। चौरासी शिवालयों की प्रतिष्ठा के साथ-साथ अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ समरांगण सूत्रधार के आधार पर धारा नगरी का निर्माण तथा उज्जैन नगरी का पुनर्निर्माण का उल्लेख भी यह मालवी लोक गाथा सम्मानजनक रूप से करती है। यह गाथा महाराजा भोज की विद्वता, काव्य प्रतिभा और रणकौशल का वर्णन करते हुए उन्हें दिव्यता प्रदान करने में न तो चूकी है और न ही कुछ छोड़ा है।

डॉ. पूरन सहगल ने यह कृति मालवा और पंजाब के संगम और समागम करते हुए अत्यंत सावधानीपूर्वक प्रस्तुत की है। यह तो डॉ. सहगल का चरित्र ही है कि, वे जिस भी काम को हाथ में लेते हैं उसे सर्व प्रकारेण पूरा करके ही साँस लेते हैं। वे सदा श्रम साध्य, अर्थ साध्य एवं समय साध्य, श्रम शील शोध विद्वान है। उनके शोध ग्रंथों पर शोधार्थी शोधरत हैं। डॉ. सहगल के द्वारा मालवा के तीनों महानायकों पर किए गए शोध सर्वेक्षण को भी एक समय शोधार्थी अपना शोध विषय बनाकर कुछ नया लाने का प्रयत्न करेंगे। जब हम पंजाबी और मालवी की भाषा-बोली पर ध्यान देते हैं तब हम पाते हैं कि, लोक बोली पंजाबी की लोक गाथाएँ डॉ. सहगल के जन्म स्थान के तथा उसी अंचल के रचनाकारों ने वर्षों पूर्व रची थी। उसमें मालवा की सौंधी सुगंध को विश्वाकाश में व्याप्त देखकर हम मालवावासियों को गर्व होना स्वाभाविक है।

यूट्यूब चैनल 'भारत विक्रम' देखने के लिए लॉगइन करें

https://youtube.com/channel/UCpeZ-d1AJUKlJtSKpiHuUJw

पुस्तक चर्चा/संजीव शर्मा

वेद और भारत

थोड़े से महातपस्वी और मेधावी लोग ब्रह्मविद्या (वेद विद्या) में निपुण होते थे अत: वेद कुछ ही लोगों के अध्ययन-अध्यापन का विषय बना रहा. किन्तु 'ऋतं सत्यम' के रूप में जिस प्रचंड शक्ति का आविष्कार किया, उसे जनकल्याण के लिए लोगों के द्वार पहुंचना था. इसके लिए इतिहास (रामायण, महारामायण अर्थात योनावासिष्ठ और महाभारत) और पुराण की सृष्टि की गई. ये सभी वेद के सिद्धान्त 'सत्यं वाद धर्म चर' पर आश्रित हैं. इनके द्वारा समाज को वेद के सिद्धान्तों से इस प्रकार अनुप्रमाणित कर दिया गया कि 'सत्यं वाद धर्म चर' भारत का प्रधान मार्गदर्शक बन गया. कालक्रम के कालांतर में भारत के कुछ विद्वानों ने अपनी विद्वता और तर्कशक्ति द्वारा जगत के कारण, उत्पत्ति और विकास का पता लगाने की चेष्टा की और दर्शन शास्त्रों की सृष्टि हुई. वेदान्त और योग को छोड़कर सभी दर्शन तर्कमूलक हैं. केवल वेदांत ब्रह्मभूत ऋषियों की अनुभूति अर्थात वेदोपदेश पर आश्रित है.

पुस्तक 'वेद और भारत' के लेखक डॉ. जर्नादन मिश्र को विभिन्न भाषाओं के साथ संस्कृत, पाली और बंगला भाषा के जानकार हैं. उन्होंने वेद और भारत को समझाने के लिए सहज और सरल भाषा में इस किताब की रचना की है. सामान्य रूप से हम यह मानकर चलते हैं कि वेदों का अध्ययन कठिन होता है लेकिन डॉ. मिश्र की रचना पढ़कर ना केवल वेदों का अध्ययन सहज हो जाता है बल्कि अपने अतीत का वैभव और वृहत्तर भारत के बारे में जानकारी मिलती है. वेदांत क्या है और वेदोपदेश क्या है? जैसे प्रश्नों का समाधान भी यह पुस्तक करती है. भारत की ज्ञान परम्परा अनादिकाल से समृद्ध रही है लेकिन मैकाले जैसे लोगों ने भारत की ज्ञान परम्परा को क्षति पहुंचाने का प्रयास किया था लेकिन वर्तमान समय में अपनी पुरातन ज्ञान परम्परा की ओर लौटने का समय आ गया है और डॉ. मिश्र की यह पुस्तक इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन करती है.

पुस्तक- वेद और भारत

लेखक -डॉ. जर्नादन मिश्र

प्रकाशक- कला मंदिर, 1687, नई सड़क दिल्ली

स्वावत्वाधिकार- राजेश कुमार मिश्र

संस्करण : प्रथम 2009

मूल्य- 600/- (छै सौ रुपये मात्र)

'पाश्चात्यों की वेद पढ़ने की पद्धति विकट है. इनमें कोई संहिता का विशेषज्ञ है तो कोई ब्राह्मण का. एक केवल अरण्यक पढ़ता है तो दूसरे का उपनिषदें ही अच्छी लगती है. कोई असभ्य, बर्बर, उजड्ड ऋषियों के समाज, आचार-विचार इत्यादि का पता लगाने की कल्पना-जल्पना जगत में ही व्यस्त है. ये मूल ग्रंथ का अध्ययन नहीं कर सकते.'

-इसी पुस्तक से

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ संस्थान स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग मध्यप्रदेश शासन के लिए 1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक श्रीराम तिवारी. समन्वयक मनोज कुमार.

आलेख सेवा नि:शुल्क वितरण के लिए. फोन : 0734-2521499 0755-2660407 e-mail : mvspujjain@gmail.com,vikramadityashodhpeeth@gmail.com